शिक्षा और मनुष्य का प्राकृतिक अस्तित्व

जिनान के.बी.

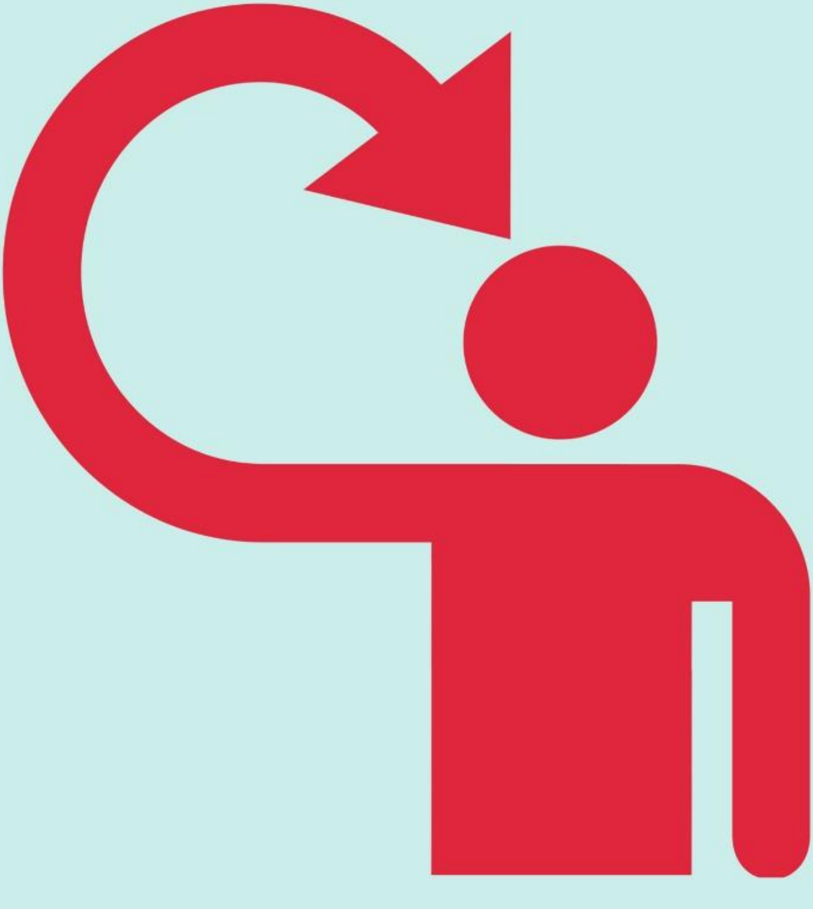

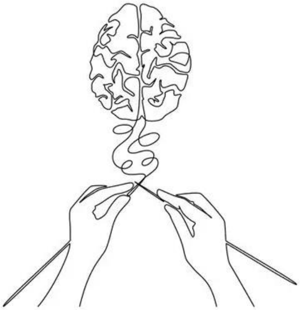

यह बात स्पष्ट है कि आज की शिक्षा संवेदनशील इंसान बनाने में नाकाम रही है। इसने मनुष्य और प्रकृति के बीच एक गहरी खाई पैदा कर दी है। यही अलगाव आज के अधिकांश व्यक्तिगत, सामाजिक और पर्यावरणीय संकटों की जड़ है।

ज्ञान का मकसद है जीवन को सहारा देना और उसे समृद्ध करना। लेकिन यह कितनी बड़ी विडंबना है कि आधुनिक शिक्षित व्यक्ति का ज्ञान अब जीवन को नष्ट करने तक पहुँच गया है। इसके उलट, जिन्हें हम "अनपढ़" कहते हैं, उन समुदायों ने हमेशा ऐसा ज्ञान रचा है जो धरती को भी बचाता है और इंसान को भी। असल में ज्ञान की सार्थकता उसे बाँटने में नहीं, बल्कि उसे खुद रचने में है। प्रक्रिया जीवित होती है - तैयार उत्पाद नहीं।

बच्चों को समझने की ज़रूरत

आधुनिक सोच बच्चों को बिल्कुल गलत तरीके से देखती है। हमने बच्चों की स्वाभाविक गतिविधियों को "सीखना", "खेलना", "काम करना" और "कला" जैसे अलग-अलग खानों में बाँट दिया है। लेकिन बच्चों के लिए ये खाने होते ही नहीं। उनके लिए हर काम बस दुनिया को समझने का

एक तरीका है। जब हम उन पर ये कृत्रिम श्रेणियाँ थोपते हैं, तो हम उनके मानसिक विकास को नुकसान पहुँचाते हैं। बच्चों को न समझ पाना ही आज की शिक्षा की सबसे बड़ी विफलता है।

सीखने की जड़ें जीव-विज्ञान में भी होती हैं, जिसे आधुनिक शिक्षा पूरी तरह नज़रअंदाज़ कर रही है। हम सुधार के नाम पर बस छोटे-छोटे बदलाव करते रहते हैं, जबकि ज़रूरत है एक बड़े बदलाव की - एक ऐसी सोच की, जहाँ ज्ञान का सृजन ही शुरुआती बिंदु हो। यह बदलाव सिर्फ बच्चों के लिए नहीं, बड़ों के लिए भी ज़रूरी है।

देशज समुदायों से सीख

यह समझने के लिए कि देशज संस्कृतियाँ जीवन को संपोषित करने वाला ज्ञान कैसे बनाती हैं, हमें उनकी सोच और सीखने के तरीकों को गहराई से जानना होगा। इससे हम 'आधुनिक' शिक्षा की उन बुनियादी कमज़ोरियों को समझ सकेंगे, जिसने हमें प्रकृति से काटकर सिर्फ इंसान को केंद्र में रखने वाली सोच दे दी है।

जब हम पारंपरिक निरक्षर समुदायों को देखते हैं, तो पाते हैं कि वहाँ कोई औपचारिक शिक्षण नहीं होता -और फिर भी बच्चे सीखते हैं। ये समुदाय बच्चों को एक ऐसा माहौल देते हैं जो बिना थोपे, बिना नियंत्रण के और पूरी तरह प्रक्रिया-आधारित होता है। आधुनिकता इसका उल्टा करती है। वह पहले से तय कर लेती है कि बच्चे को क्या, कैसे और कहाँ सीखना है। हमारी खंडित सोच ने सिर्फ बच्चों की ज़िंदगी को ही नहीं, हमारी अपनी ज़िंदगी को भी उसी साँचे में ढाल दिया है।

हमें तैयार ज्ञान की दुनिया से बाहर निकलकर नए ज्ञान के सृजन की दुनिया में कदम रखना होगा। तैयार ज्ञान से चिपके रहने की आदत हमें "मानव-सत्ता" नहीं, बल्कि "मानव-ज्ञाता" बना देती है।

'किसी सभ्य, बुद्धिमान और संवेदनशील समाज की असली पहचान यह है कि वह अपने सबसे कमज़ोर और असहाय लोगों के साथ किस तरह का व्यवहार करता है और यह भी कि उन्हें उनकी कमज़ोरी और असहायता का अहसास कराए बिना।'

दो तरह के इंसान

हम वही बनते हैं जिससे हम जुड़ते हैं। सबसे ज़रूरी सवाल यह है कि हमारी सोच और हमारा दिमाग कैसे बनता है? क्या यह जीवन के सीधे अनुभव से बनता है, या किताबों और तैयार ज्ञान से? ये दो रास्ते दो अलग तरह के इंसान बनाते हैं - एक जो "होता" है, और एक जो बस "जानता" है।

जो पहले से जाना हुआ है, उससे जुड़े रहने पर हम एक तरह की जड़ता में फँस जाते हैं। वह ज्ञान मृत होता है। लेकिन जब हम अज्ञात सेजुड़ते हैं, तो हमारे भीतर जिज्ञासा और ध्यान जागता है - हम पूरी तरह उपस्थित हो जाते हैं। यह जुड़ाव हमें विनम्र बनाता है, हमारी इंद्रियाँ तेज़ होती हैं और हम वास्तविक दुनिया से सीखते हैं। बिना

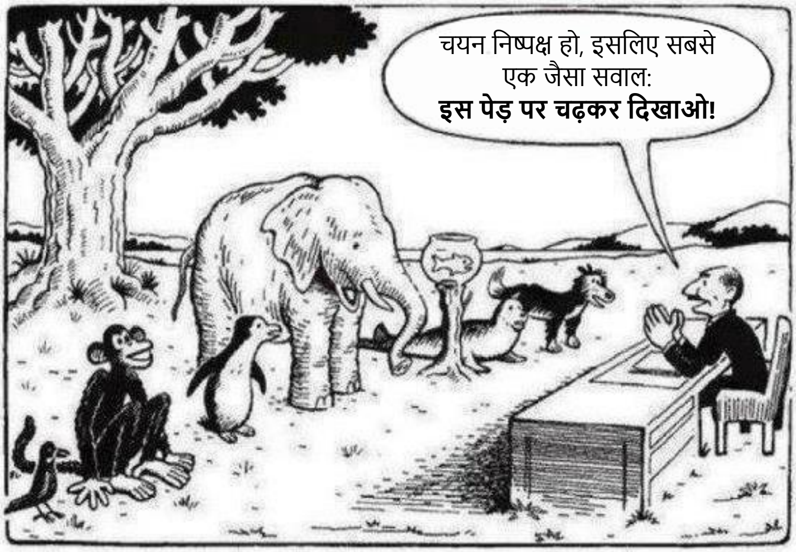

शिक्षण वाला माहौल सम्मान, सहयोग और खुलेपन के मूल्य सिखाता है। इसमें बच्चा खुद खोजता है, खुद सुधारता है और खुद आगे बढ़ता है। यही असली स्वतंत्रता है। इसके विपरीत, हमारी शिक्षा जो पूरी तरह "जानने" और "सिखाने" पर टिकी है, हमें इन्हीं मूल्यों से दूर कर देती है।

आगे का रास्ता

यह बदलाव हमें अपने सीखने के माहौल को भी नए सिरे से गढ़ने की माँग करता है - ऐसा माहौल जो ऊपर से थोपा हुआ न हो, जहाँ हम खुद भी सीखने वाले बनें, न कि सिर्फ "जानकार"। जब हम बच्चों को एक ऐसा परिवेश देंगे जिसमें वे अखंडता, बदलाव, प्रक्रिया और प्रकृति के सौंदर्य को महसूस कर सकें; तभी उनके भीतर इस सृष्टि के प्रति प्रेम और देखभाल के भाव जागेंगे।

(जिनान के.बी. की पुस्तक 'Seeing with Hands' से अनूदित अंश)